प्रज्ञा के सप्त साधनोपक्रमों का परिचय

(पातञ्जल योगदर्शन के विशिष्ट सन्दर्भ में)

सौगत घोष
शोधच्छात्र
मानविकी एवं सामाजिकविज्ञानविभाग
राष्ट्रीयप्रौद्यौगिकीसंस्थान, राउरकेला, उडीसा ।

Abstract

आचार्य पतञ्जलि के अनुसार योग की परिभाषा "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध की स्थिति ही योग है। आचार्य के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग का मूल कारण अविद्या है। इसी अविद्या के कारण ही बार बार हमें इस संसार चक्र में आना पडता है। अर्थात् संसाररुपी दुःखो का कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग है, और उस संयोग का भी निमित्त अविद्या को माना गया है । द्रष्टा और दृश्य की भिन्नता की स्थिति ही मोक्ष है। इसी स्थिति को आचार्यो ने विवेकख्याति संज्ञा प्रदान की है । द्रष्टा और दृश्य में भिन्नता के वास्तविक बोध हो जाता है, अर्थात् अविद्यादि दोषो के निवृत्त हो जाने पर चित्तवृत्ति में उत्थित विकार भी शान्त हो जाता है। चित्त की प्रकृति स्वभावतया शान्त है। वृत्तियो के होने पर ही चित्त की सत्ता सिद्ध है । साधक का चित्त वृत्तियो से रहित हो जाने से साधक को विवेकख्याति बोध हो जाता है जिससे पुनः उस साधक की प्रज्ञा अविद्यादि क्लेशो से लिप्त नहीं होती। यही प्रज्ञा की चरम अवस्था है।

आचार्य पतञ्जलि के अनुसार उपरोक्त विवेकख्याति सम्पन्न योगी की प्रज्ञा सात प्रकार की बताया गया हैं।

"तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा"

अर्थात् उस विवेकख्याति सम्पन्न योगी की उत्कृष्ट अवस्था वाली प्रज्ञा सातप्रकार की बतायी गयी है । योग दर्शन मे चतुर्व्यूह की मान्यता है – हेय,हेयोपाय,हान,हानोपाय । इन चार को ही आचार्य ने सप्तप्रज्ञाओ में प्रथम चार प्रज्ञा के रुप में स्थान दिया है।

1. परिज्ञानं हेयं नास्य पुनः परिज्ञेयमस्ति।
2. क्षीणाः हेयहेतवो न पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति।
3. साक्षात्कृतं निरोधसमाधिना हानम्।
4. भावितो विवेकख्यातिरुपो हानोपाय इति।

इन्ही चार प्रज्ञाओ को आचार्य ने कार्यविमुक्ति प्रज्ञा कहा है। "एषा चतुष्टयी कार्यविमुक्तिः प्रज्ञायाः" - अर्थात् इन चार प्रज्ञाओ के माध्यम से साधक अपने आप को अविद्यादि क्लेशो से मुक्त कर लेते है। अविद्यादि क्लेशो से मुक्त हो जाना ही द्रष्टा और दृश्य में भेद की प्रतीति हो जाना है। अतः प्रज्ञा के यह चतुर्धा प्रकार साधक को विवेकख्याति सम्पन्न होने में सहायता करता है। अन्तिम तीन प्रज्ञा विवेकख्याति स्थिति की चरमावस्था है।

उपरोक्त चार प्रज्ञा के स्थित हो जाने पर बुद्धि का अधिकार समाप्त हो जाता है (चरिताधिकारा बुद्धि) | विवेकख्याति सम्पन्न योगी केवल सत्वादि गुणो से युक्त होता है परन्तु सत्वादि गुणो के भी विषय होने से इन्हे अन्त में त्यागना होता है। अन्त में ये सत्वादि गुण भी अव्यक्त प्रकृति में लीन होने लगता है जैसे पर्वत शिखर से फिसले हुए पत्थर भूमि मे लीन हो जाते है। (गुणा गिरिशिखरकूटच्युता इव ग्रावाणो निरवस्थानाः स्वकारणे प्रलयाभिमुखाः सह तेनास्तं गच्छन्ति।न चैषां प्रविलीनानां सति पुनरुत्पादः प्रयोजनाभावादिति।)

अन्तिम अर्थात् सप्तम प्रज्ञा में साधक गुणो के सम्बन्ध से परे हो जाता है। उस समय वह् अपने स्वरुप में स्थित हो जाता है। (एतस्यामवस्थायां गुणस्म्बन्धातीतः स्वरुपमात्रज्योतिरमलः केवली पुरुष इति।)

इस प्रकार आचार्य पतञ्जलि के अनुसार उपर्युक्त सात प्रकार की प्रज्ञाओ को जान लेने से पुरुष कुशल हो जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन उपर्युक्त विषयो पर विषद आलोचना की जायेगी।

Keywords: द्रष्टा,दृश्य,साधक,अविद्या,प्रकृति,पुरुष,चित्त,वृत्ति |

भूमिका-

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"

चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग की पराकाष्ठा है। पातञ्जलयोग दर्शन में इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए आचार्य पतञ्जलि ने विभिन्न उपायों पर,प्रणालिओं पर,चित्तवृत्ति,समाधि,चित्तभूमि,प्रज्ञास्वरूपादि अनेक विषयों पर स्वमत प्रस्तुत किया है।उनके अनुसार योग के अनुष्ठान में अभ्यास रत नैरन्तर्य सत्कारोसेवित साधक[1] जैसे जैसे निरोध वृत्ति में दृढ होते चले जाते है तो उनकी प्रज्ञा प्रान्त स्वरुपवाली हो जाती है।इन्ही प्रान्तभूमियों को प्राप्त करते हुए साधक योग के उच्चतम मार्ग असम्प्रज्ञात समाधि[2] को सिद्ध करते हुए केवली भाव अर्थात् आनन्दमय हो जाता है।त्रिगुणजन्य जो समस्तप्रकार के व्युत्थान साधक के चित्त में उदित होते रहते हैं उनका स्पन्दन सम्पूर्णतया समाप्त हो जाता है।इन प्रान्तभूमियों को प्राप्त करने हेतु योगाङ्गाभ्यास[3] बहुत जरुरी है।जिससे साधक चेतना के उस प्रकाश रुप को पहिचान लेता है और अपने को द्रष्टा मानते हुए बुद्धिगत समस्त कार्य से भेद निश्चित कर लेता है।यह उत्कृष्ट स्तर वाली प्रज्ञा सात प्रकार की है जो इस प्रकार वर्णित है-

"तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा"

तस्य अर्थात् उस लब्ध विवेकख्याति योगी की (प्रान्तभूमिः) जो प्रज्ञा का विशेषण है **(प्रकृष्टः उत्कृष्टः अन्तः कोटिः यासां भूमिनाम् अवस्थानाम् ताः प्रान्ताः)** ऐसे उत्कृष्ट स्तर वाली प्रज्ञा(बुद्धि) सात प्रकार की होती है।जबकि अन्य सामान्य जनों की बुद्धि विविधरुपा होती है।चित्त की पाँच भूमियाँ हैं जो क्षिप्त,मूढ,विक्षिप्त,एकाग्र,निरुद्ध इस प्रकार है-

क्षिप्त भूमि-"रजसा विषयेष्वेव वृत्तिमत्[4]" - रजोगुणाद्रेक से विषयों में व्यापृत रहने वाले भूमि।

---

[1] स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः॥१.१४(समाधि पाद)पृ.५५

[2] विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारोशेषोऽन्यः॥१.१८ (समाधि पाद) पृ.६७

[3] योगाङ्ग-यमनियमाऽऽनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥(साधनपाद २९)पृ.२६५

[4] यो.वा. पृ.८

मूढ भूमि-"तमसा निद्रावृत्तिमत्[5]" - तमोगुणाद्रेक के कारण मूर्च्छादि व्यापारवान् चित्त की भूमि मूढ भूमि है।

विक्षिप्त भूमि-"क्षिप्तादविशिष्टं विक्षिप्तं ।सत्वाधिक्येन समादधदपि चित्तं रजोमात्रयाऽन्तराऽन्तराविषयान्तरवृत्तिमद्[6]" - अर्थात् सत्वगुणाधिक्य के कारण आंशिक काल के लिए समाधि लगने पर भी रजोगुणाद्रेक से चित्त पुनः विषयों की और आकृष्ट हो जाता है।

एकाग्रभूमि-"एकस्मिन्नेव विषयेऽग्रं शिखा यस्य चित्तदीपस्येत्येकाग्रं,विशुद्धसत्वतयैकस्मिन्नेव विषये वक्ष्यमाणावधीकृतकालपर्यन्तमचञ्चलं निवातस्थदीपवत्[7]"- अर्थात् सात्विक वृत्ति के प्रभाव से चित्त एक ही विषयों में निरन्तर लगा रहता है।

निरुद्ध भूमि-"निरुद्धं च निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्रशेषमित्यर्थः[8]"- चित्त की राजसिक तथा तामसिक वृत्तियों के साथ साथ सात्विक वृत्ति क भी परित्याग करना पडता है इस निरुद्ध भूमि में केवल संस्कारमात्र अवशेष रहता है।

इन पाँच भूमियों मे से क्षिप्त तथा मूढ भूमिओं में क्रमशः रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता के कारण ये उत्कृष्ट प्रज्ञा नहीं मानी जाती। आचार्य के अनुसार विक्षिप्त भूमि को छोडकर वाकि चार भूमि में समाधि सम्भव है।चित्त का किसी भी विषय में एक क्षण के लिए भी ठहरना समाधि है।चित्त का किसी विषय में बिना रुके हमें उस विषय का ज्ञान नहीं हो सकता।इसलिए चित्त की हर स्थिति में समाधि है परन्तु सभी समाधि योग नहीं है।(योग शब्द युज समाधौ धातु घञ् प्रत्यय लगाकर बना है।) "**योगः समाधि,स च सार्वभौम चित्तस्य धर्मः[9]**"। समाधि में ज्ञान समग्र होता है।

विवेकख्याति प्राप्ति की विधि-

योगदर्शन में अन्तःकरण सामान्य जो चित्त रुप से वर्णित है वह तीन प्रकार का बताया गया है- "**चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्[10]**" अर्थात् चित्त प्रख्या (ज्ञान,प्रकाश स्वरुप), प्रवृत्ति (क्रिया स्वरुप), और स्थिति (क्रिया राहित्य एवं प्रकाश राहित्य,गतिशुन्यता) तीन प्रकार बताया गया है। इन तीनों प्रकृति का आधार तीन गुण हैं (सत्व,रजस्,तमस्) ।

सत्व गुण प्रधान चित्त-"प्रख्यारुपं हि चित्तसत्वं रजस्तमोभ्यां संसृष्टमैश्वर्यविषयप्रियं भवति"[11] अर्थात् प्रकाशशील चित्त सत्वगुण प्रधान होता है।परन्तु रजस् और तमोगुण के सम्पर्क के कारण इस प्रकार चित्त को ऐश्वर्य और विषय प्रिय लगते है।

---

[5] वहीं

[6] वहीं

[7] वहीं

[8] वही

[9] व्यास भाष्य पृ.१

[10] व्यास भाष्य पृ.९

[11] वहीं

रजोगुण प्रधान चित्त-"तदेव प्रक्षीणमोहावरणं सर्वतः प्रद्योतमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपगं भवति।"[12] अर्थात् मोह के आवरण से रहित जब चित्त सब और से प्रकाशमान रजोगुण से व्याप्त होता है,तब चित्त में धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

तमोगुण प्रधान चित्त-"तदेव तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति"[13]। जब वही चित्त तमोगुण से आच्छादित रहता है तो उसकी प्रवृत्ति अधर्म,अज्ञान,अवैराग्य,और अनैश्वर्य की प्राप्ति में होती है।

विवेकयुक्त चित्त-"तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरुपप्रतिष्ठं सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रं धर्ममेधध्यानोपगं भवति।तत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षते ध्यायिनः"[14]। अर्थात् जब चित्त रजो गुण के मल से रहित एवं अपने स्वरुप में प्रतष्ठित हो जाता है,तब साधक को धर्ममेधध्यान विशुद्ध आत्मस्वरुप को उपलब्ध कराने वाली समाधि प्राप्त होती है।इसी धर्ममेध को योगीजन परप्रसंख्यान कहते है। इसी को विवेकख्याति भी कहते है।

अर्थात् बुद्धि/चित्त जब रजो गुण तथा तमोगुण से रहित शुद्ध सत्व गुण का आश्रय लेकर स्वरुप में प्रतिष्ठत हो जाता है,वही विवेकख्याति है।**"तद्धर्ममेधाख्यं ध्यानं परमं प्रसख्यानं तत्वज्ञानं विवेकख्यातेरेव पराकष्ठेति योगिनो वदन्तीत्यर्थः"**[15]।

सप्तविधि प्रज्ञा- इसप्रकार लब्धविवेकख्याति योगी की प्रान्तभूमि (उत्कृष्टप्रकार की प्रज्ञा) सातप्रकार की होती है।**"निर्विप्लवविवेकख्यातिनिष्ठामापन्नस्य सप्तप्रकारैव प्रज्ञा विवेकिनो भवति"**[16]।

१) "परिज्ञातं हेयं नास्य पुनः परिज्ञेयमस्ति" -

दुःखमयत्व का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाना समस्त प्रकार के दुःखों से परिचित चित्त ही प्रथम प्रकार की प्रज्ञा है।पुण्य तथा अपुण्य कर्मो के संग्रह कर्माशय रुप है।इन्ही कर्मो से प्राप्त जन्म आयु भोग पाप पुण्य के हेतु होने से जीवन सुख दुःखात्मक है।

"ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्"[17]२.१४

सांख्य में तीन प्रकार का दुःख बताया गया है-आध्यात्मिक,आधिभौतिक,आधिदैविक । आचार्य पतञ्जलि ने सम्पूर्ण संसार को विवेकी जनों के लिए दुःखमय माना है।

"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः"[18]

परिणाम दुःख,ताप दुःख, और संस्कार दुःख तथा गुणवृत्तियों (सत्व,रजस्,तमस्) में परस्पर विरोध होने से विवेकी पुरुष के लिए सबकुछ दुःख स्वरुप ही है। परिणाम दुःख से अभिप्राय केवल दुःख के परिणामों से बचना नहीं है अपितु सुख की आसक्ति का भी त्याग करना जरुरी है।क्योकि सुखभोग भी परिणाम में दुःखस्वरुप

---

[12] वहीं

[13] वहीं

[14] वहीं

[15] यो.वा. पृ.१४-१५

[16] त.वै. पृ.२३७

[17] पातञ्जलयोगदर्शनम् डॉ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव पृ.१९८

[18] वही पृ.१९९

ही है। चेतन और अचेतन का समूह यह संसार है।व्याक्ति को इन दोनों से ही दुःख का अनुभव होता है।लोग सुख के साधनों की प्राप्ति हेतु शरीर मन और वाक्य से चेष्टा करते है।इसी हेतु दूसरे को पीडा देते है या अनुग्रह करते है।इसप्रकार परानुग्रह अथवा परपीडा द्वारा धर्म अधर्म का संचय करते है।और यही कर्माशय दुःखरुप में प्रकट होता है।यही तापदुःख है।

इसप्रकार इन सुख दुःखों आदि अनुभवों का प्रभाव जो हमारे चित्त पर पडता है,यह संचित होकर स्मृति के द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में सुख और दुःख के रुप में क्रमशः जाग्रत हो जाता है।संस्कारो के वशीभूत वासनाजन्य इन्ही दुःखों को संस्कार दुःख कहते है और इन समस्तप्रकार के दुःखों का कारण है त्रिगुणों में विरोध- "**गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिरुपा बुद्धिगुणाः परस्परानुग्रहतन्त्रीभूत्वा शान्तं घोरं मूढं वा प्रत्ययं त्रिगुणमेवारभन्ते**"[19]। अर्थात् इन गुणो के कार्यों में भी स्थिरता का अभाव है।कभी सत्व गुण की प्रधानता है तो कभी रज गुण की तो कभी तम गुण की।इस चलायमान स्थिति के कारण चित्त हमेशा परिवर्तित होता रहता है।इसीलिए विवेकी पुरुष ने संसार को दुःख रुप माना है।

दुःख का कारण – "**द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः**"।२.१७

आचार्य पतञ्जलि के अनुसार द्रष्टा और दृश्य का संयोग ही हेय का कारण है।द्रष्टा अर्थात् बुद्धि का प्रतिसंवेदन करनेवाला पुरुष ("**द्रष्टा बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुषः**"[20]) और दृश्य बुद्धि पर आरुढ सभी धर्म ("**दृश्या बुद्धिसत्वोपारुढा सर्वे धर्माः**"[21]) इन द्रष्टृ शक्ति और दर्शन शक्ति का अनादि तथा पुरुष के प्रयोजन के लिए हुआ संयोग हेय का हेतु है। दुःख का कारण द्रष्टा और दृश्य में संयोग को माना गया है और इस संयोग का भी हेतु अविद्या अथवा अज्ञान को माना है।

"**तस्य हेतुरविद्या**"२.२४

अर्थात् इस अविद्या मिथ्या ज्ञान की वासना से ग्रसित बुद्धि विवेकख्यातिरुप कार्य को सिद्ध नहीं कर पाती।अतः दुःख का जड अविद्या ही है।

२) "**क्षीणाः हेयहेतवो न पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति**"[22] - हेय अर्थात् दुःख क्या है यह प्रथम प्रज्ञा में साधक को ज्ञात हो जाता है तदनन्तर उस हेय का हेतु जो द्रष्टा और दृश्य का संयोग है वह भी साधक जान लेता है।इसप्रकार दुःख तथा दुःखों का कारण जान लेने पर साधक द्वितीय प्रज्ञा में इस दुःख के कारण का निवारण कैसे हो इसका समाधान करते है।आचार्य कहते है- "**तत्संयोगहेतुविवर्जनात् स्यादयमात्यान्तिको दुःखप्रतीकारः**"[23] अर्थात् द्रष्टा और दृश्य के संयोग के कारण को भी त्याग करने से सर्वदा के लिए दुःख का नाश हो जाता है।लोक में भी ऐसा देखा जाता है दुःख के हेतु के प्रतिकार से त्याज्य दुःख का भी प्रतीकार हो जाता है।

अर्थात् साधक को प्रथम दुःख का हेतु संयोग उसे त्यागना है तदुपरान्त उस संयोग का भी हेतु अविद्या को त्यागना होता है।संयोग का विवर्जन तभी संभव है जब साधक भेद्य भेदक और परिहार को जान ले। यथा –

---

[19] व्यास भाष्य पृ.२००

[20] व्यास भाष्य पृ.२१२

[21] वही पृ.२१२

[22] व्यास भाष्य पृ.२५५

[23] वही पृ.२१३

पैर के तलुओं का काँटे से विध जाना दुःख है (भेद्य) । काँटा उस दुःख का कारण (भेतृत्वम) । काँटे को पैर से निकल देना परिहार (परिहार)[24] है। इसीतरह शुद्ध अपरिणामी द्रष्टा का दृश्य रुप में प्रतिसंवेदन दुःख है। द्रष्टा और दृश्य का संयोग दुःख का कारण है। संयोग का विवर्जन परिहार है।इसप्रकार संयोग का त्याग तथा उस संयोग का हेतु अविद्या है उसका भी परिहार करना है। द्रष्टा और दृश्य का संयोग दुःख (भेद्य) है। संयोग का कारण अविद्या (भेतृत्वम) है। विवेकख्याति से अविद्या निवृत्ति (परिहार) है।

योगवार्तिक में कहा गया है कि-"**ततश्च हेयहेतवोऽविद्याकामकर्मादयो विवेकसाक्षात्कारेण ममक्षीणाः इत्यर्थः**"[25] अर्थात् विवेकख्याति के द्वारा सारे अविद्यादि संस्कार दग्धबीज हो जाते है।अर्थात् द्वितीय प्रज्ञा में वह अविद्यादि संस्कार सम्पूर्णतया क्षीण कर दिया जाता है।

३) "**साक्षात्कृतं निरोधसमाधिना हानम्**"[26]-

तृतीय प्रज्ञा में साधक निरोध समाधि के द्वारा समस्त प्रकार के दुःखों से मोक्ष का अनुभव कर लेते है।मोक्ष हान की परिभाषा –"**बुद्धिनिवृत्तिरेव मोक्षः**[27]" बुद्धि की निवृत्ति ही मोक्ष है। अथवा "**तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्**"२.२५ अर्थात् दुःख का निमित्त द्रष्टा और दृश्य का संयोग और उस संयोग का भी निमित्त अविद्या है,जब अविद्या का नाश हो जाता है तो संयोग का नाश हो जाता है और जब संयोग का नाश हो जाता है तो दुःख का नाश हो जाता है,यह दुःख का नाश ही मोक्ष है।

अर्थात् साधक जब विवेकख्याति प्रज्ञा अर्थात् स्वरुप में स्थित हो जाता है एवं सत्व गुण का अधिकारी बन जाता है तब उसमें अविद्यादि जनित किसीप्रकार का क्लेश अथवा कर्माशयों की वासना नहीं रहती उस मूल अविद्या के नष्ट हो जाने पर अपरिणामी पुरूष और प्रकृति का संयोग भी समाप्त हो जाता है यही स्थिति मोक्ष है।

आचार्य के अनुसार निरोध समाधि से मोक्ष का साक्षात्कार सम्भव है।चित्त की एकाग्र भूमि में रजस् और तमस् वृत्तियों का पूर्णतया निरोध हो जाने पर केवल सात्विक वृत्ति उदित रहती है।फलतः साधक को समस्त वस्तुओं का वास्तविक निर्भान्त तथा सामग्रिक ज्ञान होता है,इसीलिए इस समाधि को सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।(**सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञात समाधिः**) इसी समाधि के सिद्ध होने से साधक को प्रकृति और पुरुष इन दो अन्तिम तत्वों का विविक्तज्ञान भी हो जाता है।यही विवेकख्याति है।

इस सम्प्रज्ञात समाधि से आगे साधक जब असम्प्रज्ञात समाधि की और अग्रसर होता है तब साधक को विवेकख्याति सम्पन्न बुद्धि अर्थात् सात्विक वृत्ति का भी निरोध करना होता है जिससे केवल निरोध संस्कार ही शेष रहता है।इसप्रकार के चित्त में किसी प्रकार की व्युत्थान सम्भव नहीं है।इन निरोधात्मक संस्कारों को ही अवशिष्ट रखने वाले पूर्ण वृत्ति निरोध को असम्प्रज्ञात समाधि कहते है।इस समाधि में बुद्धिकृत ज्ञान विल्कुल नहीं रहता।इसी असम्प्रज्ञात समाधि को निरोध समाधि भी कहते है।आचार्य का कहने का अभिप्राय यह है कि इसी निरोध समाधि से मोक्ष का अनुभव तत्काल सिद्ध हो जाता है।

---

[24] वही.२१३

[25] यो.वा. पृ. २३८

[26] व्यास भाष्य पृ.२५५

[27] व्यास भाष्य पृ.२४७

४) "**भावितो विवेकख्यातिरुपो हानोपाय इति**"[28] - अर्थात् विवेकख्याति रुप मोक्षोपाय सिद्ध कर लिया गया है।योगसूत्र में भी वर्णित है कि "**विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः**"२.२६ अर्थात् मिथ्याज्ञान रहित विवेकख्याति हान का उपाय है।और भी कहा गया है कि "**सत्वपुरुषान्यताप्रत्ययो विवेकख्यातिः**"[29] अर्थात् बुद्धि और पुरुष की भिन्नता का बोध विवेकख्याति है।सात्विक बुद्धि के उदित हो जाने पर मिथ्याज्ञान जब दग्धबीज हो जाता है तब बुद्धि के विवेकज्ञान की धारा निर्मल बनी रहती है।इसप्रकार व्यक्ताव्यक्त विज्ञान रुप यह विवेकख्याति ही कैवल्य का अमोघ उपाय है जिसे चतुर्थ प्रज्ञा के उदित हो जाने पर साधक सिद्ध कर लेते है।"**विप्लवो मिथ्याज्ञानं तद्रहिता विवेकख्याति**"।[30]

"**एषा चतुष्टयी कार्यविमुक्तिः प्रज्ञायाः चित्त विमुक्तिस्तु त्रयी**"[31] योगदर्शन में जो चतुर्व्यूह की मान्यता है वह यही चार है क)हेय ख)हेयहेतु ग)हान घ)हानोपाय इन चार कार्यों को सम्पन्न कर लेने से अन्य कोई करणीय कार्य शेष नहीं रहता।इसीलिए इन चारो को कार्यविमुक्ति प्रज्ञा कहा गया है।चेष्टा द्वारा यह विमुक्ति होती है और साधन कार्य यही पर समाप्त हो जाता है।"**कार्यान्तरेण विमुक्तिः प्रज्ञाया इत्यर्थः**"।[32]

अवशिष्ट तीन प्रकार की प्रान्तभूमि चित्तविमुक्ति प्रज्ञा है।कार्यविमुक्ति हो जाने पर यह प्रज्ञा स्वतः उदित होती है।यही ज्ञान की पराकाष्ठा है प्रज्ञा की प्रान्त अवस्था है।इसके बाद कैवल्य है।ये तीन प्रान्त प्रज्ञाएँ अग्रलिखित है-

५) "**चरिताधिकारा बुद्धिः**"[33] - उपरिवर्णित स्तरों तक बुद्धि के भोगापवर्ग रुप समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके है।जिससे बुद्धि द्वारा और कोई प्रयोजन न रहने पर बुद्धि कृतकृत्य हो चुकी है।बुद्धि का अन्तिम कार्य यही है कि वह अपने स्वरुप में स्थित हो जाए,विवेकख्याति से भेद ज्ञान स्पष्ट हो जाए जो चतुर्थ प्रज्ञा तक साधक को सम्पन्न हो जाता है।साधक को विवेकख्याति बोध हो जाता है।तदुपरान्त इस पञ्चम प्रज्ञा में बुद्धि (चरित अधिकारा) अर्थात् समाप्त अधिकार वाली हो जाती है।

६) "**गुणा गिरिशिखरकूटच्यूता इव ग्रावाणो निरवस्थानाः स्वकारणे प्रलयाभिमुखाः सह तेनास्तं गच्छन्ति। न चैषां प्रविलीनानां सति पुनरुत्पादःप्रयोजनाभावादिति**"[34] अर्थात् साधक की जो विवेकख्याति प्रज्ञा सत्वादि गुणों से युक्त होकर चित्त को स्थित कर स्वरुप में प्रतिष्ठत हो चुकी थी।अन्तिम में साधक को उस सत्व गुण का भी त्याग करना पडता है,क्योकि गुण होने के कारण उसका भी विषय होते है।जब सत्वादि गुणों का भी निरोध हो जाता है तो बुद्धि का स्पन्दन समाप्त हो जाता है वह साम्यावस्था में आ जाती है, (क्योकि तीनों गुणों की विषमावस्था ही व्युत्थान में हेतु है) फिर से उदित नहीं होगी यही षष्ठ प्रज्ञा है।इसी को एक उदाहरण से स्पष्ट किया गया है- यथा पर्वत चूडा से बृहत् उपलखण्ड नीचे गिरने पर पुनः अपने स्थान में नहीं लौटता उसीप्रकार गुणसमूह भी अव्यक्त प्रकृति में लीन होने के उपरान्त पुनः उदित नहीं होते।नित्य मुक्त होने के लिए योगी का पथ

---

[28] व्यास भाष्य पृ.२५५

[29] व्यास भाष्य पृ.२५३

[30] त. वै. पृ.२३७

[31] व्यास भाष्य पृ. २५५

[32] त. वै. पृ.२५९

[33] व्यास भाष्य पृ.२५५

[34] वहीं

प्रशस्त हो जाता है।(यहाँ गुण से अभिप्राय सुख दुःख मोह रुप बुद्धि का गुण मौलिक त्रिगुण नहीं) यही द्वितीय प्रकार की चित्त विमुक्ति प्रज्ञा है।

७) "**एतस्यामवस्थायां गुणसम्बन्धातीतः स्वरुपमात्रज्योतिरमलः केवली पुरुष इति**"[35]

पूर्वोक्त छः भूमिकाओं का अभ्यास हो जाने पर और भेद न दिखाई देने पर जो आत्मभाव में अविचलित स्थिति हो जाती है इसी अन्तिम प्रज्ञा में साधक गुणों के सम्बन्धों से रहित स्वप्रकाश निर्मल केवली एकाकी द्रष्टा मात्र चित्तवृत्ति की प्रतीति से रहित अनुभव करता है।यही कैवल्य विषयक सर्वोत्तम प्रज्ञा है।परन्तु कैवल्य नहीं है।इन सात प्रान्तभू मि प्रज्ञाओ से अवगत हो जाने पर साधक को कुशल कहा जाता है। "**एतां सप्तविधां प्रान्तभूमिप्रज्ञामनुपश्यन् पुरुषः कुशल इत्याख्यायते**"[36] यही जीवन्मुक्ति की अवस्था है अर्थात् जीवनकाल में ही जो दुःख संस्पर्श क्लेशादि से निःस्पृह है एवं गुणों के सम्पर्क से सर्वथा रहित है।

उपसंहार -

व्यक्त जगत् में चित्त से बढकर शक्तिशाली कोई पदार्थ नहीं है।चित्त ही जगत् की सृष्टि करता है,चित्त ही सभीप्रकार सुख दुःख के उत्पादक है और चित्त ही वासना रहित हो जाने पर ब्रह्म हो जाता है।चित्त जब इन जागतिक मलिन वासनाओं से सम्पृक्त होकर आत्मस्वरुप का विस्मरण होने से कर्तृत्वपन का निश्चय कर लेता है यहीं से समस्त प्रपञ्च का विस्तार होने लगता है।ब्रह्म की चेतन शक्ति से ही प्रकृति चेतनवत् दिखाई पडती है।कोई भी दर्शनो का अन्तिम उद्येश्य इन जागतिक प्रपञ्च से मुक्त होना है बुद्धि को इन मलिन वासनाओं से असम्पृक्त होकर परम सत् की और आगे बढना है।ऐसा ही योगदर्शन में भी है,प्रज्ञा के सप्त आयाम बताया गया है। जहाँ साधक प्रथम बुद्धि के कार्यों से स्वयं को विमुक्त कर लेता है पुनः जब बुद्धि का समस्त अधिकार समाप्त हो जाता है तब बुद्धि इन जागतिक प्रपञ्च से स्वरुप में अर्थात् आत्मा में प्रतिष्ठत हो जाता है जिससे साधक स्वयं प्रकाश आनन्दस्वरुप होकर जीवन्मुक्त स्थिति में विराज करता है।इस कार्य को कैसे सम्पादित करना है यही योगदर्शन में बुद्धि के सप्त सोपानो के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि प्रथम दुःख को जानना है तदनन्तर दुःख के उपायो को पुनः मोक्ष को और मोक्ष के उपाय को भी जानना है इन चार कार्य को प्रथम चार प्रज्ञा से सफल करते हुए साधक प्रज्ञा की चरम अवस्था जहाँ विवेकख्याति के सदा उदित रहने से द्रष्टा और दृश्य के भेद ज्ञान में कुशल हो जाते है यहीं चित्त विमुक्ति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव,पातञ्जलयोगदर्शनम् व्यासभाष्य-संवलितम् तत्त्व योगसिद्धि-हिन्दीव्याख्योपेतम्,चौखम्बा सुभारती प्रकाशन(२०१२)
2. श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द आरण्य,पातञ्जल योगदर्शन व्यासभाष्य,उसका हिन्दी अनुवाद तथा सुविशद व्याख्या,मोतीलाल बनारसीदास,नवम् पुनर्मुद्रण दिल्ली,२०१७
3. प्रो. ज्ञानप्रकाश शास्त्री,महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्र(महर्षि-व्यासकृत-योगसूत्रभाष्य और आचार्य रजनीश के विचारों के आलोक में),परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली,प्रथम संस्करण २०१६

[35] व्यास भाष्य पृ. २५५

[36] वहीं